दर्शन प्राभृत, यहाँ क्या कहा? मूल तो ऐसा कहते हैं कि '**दंसण मूलो धम्मो**' जिनवर ने शिष्यों को कहा। सम्यक्त्व मूल धर्म है और वह धर्म है, वह जिनवर का कहा हुआ है। सम्यग्दर्शन, ज्ञान, चारित्रसहित वीतरागभाव और बाह्य नग्न मुद्रा, उसे यहाँ दर्शन-जिनदर्शन कहा है। ऐसे जैनदर्शन की प्रतीति सम्यग्दर्शन, वह मूल है। वह मूल है जैनधर्म का और उसका मूल सम्यग्दर्शन। उस सम्यग्दर्शन के बाह्य कारण थोड़े कहे।

उपशमसम्यक्त्व होता है। मिथ्यात्वकर्म का उपशम होने से उपशमसम्यक्त्व होता है। जानने की बात है। यह साधारण थोड़ी ले ली है। **तथा इन सात प्रकृतियों में छह का तो उपशम या क्षय हो और एक सम्यक्त्व प्रकृति का उदय हो, तब**

क्षयोपशम सम्यक्त्व होता है। समकित। जैनधर्म का मूल पहला मोक्षमार्ग, उसका मूल समकित है, वह सम्यक् आत्मा का अनुभव। भगवान सर्वज्ञ परमात्मा ने कहा ऐसा यह आत्मा, ऐसे आत्मा के सन्मुख होकर अन्तर के अनुभव में प्रतीति करना, उसका नाम धर्म की शुरुआत-सम्यग्दर्शन कहते हैं। कहो, सेठी! यह वीतराग का धर्म है।

तीर्थंकर परमेश्वर ने जो जैनधर्म कहा, वह तो चारित्र, दर्शन-ज्ञान-चारित्र का पूरा रूप, उसे जैनधर्म कहा है। उसका मूल वापस सम्यग्दर्शन। इन तीन में मूल सम्यग्दर्शन। उसकी प्रतीति होना। मुनि ऐसे, जैनधर्म ऐसा होता है। वीतराग परिणाम जिनके, वीतरागी परिणामी, ऐसा मुनियों का धर्म है, वह जैनधर्म, वह जैनदर्शन। उसकी अन्तर में प्रतीति होना। राग और पुण्य-पाप के विकल्प से रहित वह स्वरूप जिसका मोक्षमार्ग है, उसकी यहाँ अन्तर में प्रतीति शुद्ध चैतन्य के आश्रय से निरुपाधि-रागरहित सम्यग्दर्शन दशा होना, उसे प्रथम धर्म का मूल कहते हैं। कहो, समझ में आया? यहाँ से धर्म की शुरुआत होती है। देवचन्दजी! वीतराग का मार्ग यहाँ से शुरु होता है। यह सम्यग्दर्शन न हो तो उसे कुछ नहीं होता। उसका ज्ञान भी मिथ्या, उसके व्रत भी मिथ्या और (उसका) चारित्र भी मिथ्या।

कहते हैं कि प्रकृति सात है। उसकी एक प्रकृति का उदय रहे और छह जाए, उसे क्षयोपशम कहते हैं। उसमें अतिचार लगे, वह जानने की बात है। सात प्रकृति का सत्ता में से नाश होता है, उसे क्षायिक कहते हैं।

इसप्रकार उपशमादि होने पर जीव के परिणामभेद से तीन प्रकार होते हैं;.. उपशम, क्षयोपशम और क्षायिक। **वे परिणाम अति सूक्ष्म हैं, केवलज्ञानगम्य हैं, इसलिए इन प्रकृतियों के द्रव्य पुद्गलपरमाणुओं के स्कंध हैं,..** वे अति सूक्ष्म हैं, यह जानने की बात ली है। **उनमें फल देने की शक्तिरूप अनुभाग है, वह अतिसूक्ष्म है, वह छद्मस्थ के ज्ञानगम्य नहीं है।** भगवान आत्मा के परिणाम सूक्ष्म केवलज्ञानगम्य है और अपने को अनुभूतिगम्य होते हैं।

मुमुक्षु : अनुभूतिगम्य होते हैं, वह अब आयेगा।

पूज्य गुरुदेवश्री : अब आयेगा, परन्तु पहले से वापस (ऐसा मान ले कि) केवलीगम्य है, इसलिए नहीं जाने जा सकते, ऐसा नहीं है। **वे भी अतिसूक्ष्म हैं, वे भी**

केवलज्ञानगम्य हैं। तथापि जीव के कुछ परिणाम छद्मस्थ के ज्ञान में आने योग्य होते हैं, वे उसे पहिचानने के बाह्य-चिह्न हैं,.. अब बाह्य चिह्न की बात करेंगे।

मुमुक्षु : अब यहाँ जरा समझाने जैसा...

पूज्य गुरुदेवश्री : अब बाह्य चिह्न कहेंगे। **उनकी परीक्षा करके निश्चय करने का व्यवहार है...** क्या कहते हैं? आत्मा पूर्ण ज्ञायक आनन्दस्वभाव का अन्तर अनुभव, प्रतीति अनुभव में होना, वह सम्यक्त्व है परन्तु वह सम्यग्दर्शन सीधे ज्ञात नहीं होता, कहते हैं। उसकी अनुभूति, जो आत्मा का ज्ञान होता है, वह अनुभूति उस सम्यग्दर्शन का बाह्य चिह्न है। सेठी!

मुमुक्षु : कठिन पड़े।

पूज्य गुरुदेवश्री : कठिन पड़े परन्तु... अन्तर स्वरूप भगवान आत्मा का भान होकर प्रतीति होना, वह प्रतीति होती है, उसे सम्यग्दर्शन (कहा जाता है) परन्तु सम्यग्दर्शन सीधे ज्ञात नहीं होता, कहते हैं। सूक्ष्म बहुत है। उसके साथ बाह्य लक्षण (होते हैं)। बाह्य क्यों? - कि दर्शन है और ज्ञान जो है, (वह) दर्शन से भिन्न चीज़ है; इसलिए सम्यग्दर्शन को अनुभूति द्वारा जानना, वह व्यवहार और बाह्य चिह्न हुआ तो व्यवहार हुआ। कहते हैं न, देखो न!

वे उसे पहिचानने के बाह्य-चिह्न हैं, उनकी परीक्षा करके निश्चय करने का व्यवहार है - ऐसा न हो तो छद्मस्थ व्यवहारी जीव के सम्यक्त्व का निश्चय नहीं होगा और तब आस्तिक्य का अभाव सिद्ध होगा,.. आस्तिक्य / श्रद्धा का अभाव सिद्ध हो। **व्यवहार का लोप होगा - यह महान दोष आयेगा।**

मुमुक्षु : व्यवहार का लोप कहा।

पूज्य गुरुदेवश्री : व्यवहार, यह कौन सा व्यवहार? यह व्यवहार अर्थात् आत्मा वस्तु है, उसका भान होकर प्रतीति हो, उस प्रतीति के साथ ज्ञान, अनुभूति हो। वेदन अनुभव आनन्द का (होता है)। उस अनुभूति द्वारा प्रतीति को जानने का नाम व्यवहार है।

मुमुक्षु : अनुभूति प्रत्यक्ष है।

पूज्य गुरुदेवश्री : प्रत्यक्ष अनुभूति, वह ज्ञान की पर्याय है और दर्शन श्रद्धा की

पर्याय है। देवचन्दजी! सूक्ष्म बात है। इस श्रद्धा की पर्याय को ज्ञान की पर्याय द्वारा जानना, एक गुण की दशा को दूसरे गुण की (पर्याय द्वारा जानना), यहाँ तो इसका नाम व्यवहार है।

मुमुक्षु : राग नहीं ?

पूज्य गुरुदेवश्री : राग-फाग की बात भी कहाँ है यहाँ ?

भगवान आत्मा सर्वज्ञ तीर्थंकरदेव केवलज्ञानी ने जैसा कहा, वैसा अनुभव में आना। समझ में आया ? अभी यह धर्म की पहली बात की बात। धर्म, यह धर्म। बाकी धर्म है नहीं। बाकी दया, दान, व्रत, पूजा, भक्ति, वह शुभराग और पुण्य है; वह धर्म नहीं।

मुमुक्षु : कोई नहीं करेगा।

पूज्य गुरुदेवश्री : करे, न करे, वह तो आये बिना रहेंगे ही नहीं। जाएगा कहाँ ? वीतराग कहाँ हो गया है ? आते हैं, वह अलग बात है परन्तु वह धर्म का रूप नहीं है। भगवान ने तो धर्म उसे कहा है कि रागरहित वस्तु चैतन्यमूर्ति पूर्ण आनन्द और ज्ञान का पिण्ड परमात्मा को जो प्रगट दशा हुई, उन सब शक्तियों का पिण्ड आत्मा है। ऐसे आत्मा के सन्मुख होकर प्रतीति, भानसहित अनुभवसहित होना, उसे भगवान प्रथम सम्यग्दर्शन और धर्म कहते हैं। आहाहा!

कहते हैं **व्यवहार का लोप होगा - यह महान दोष आयेगा। इसलिए बाह्य चिह्नों को आगम,..** बाह्य चिह्न द्वारा **आगम, अनुमान तथा स्वानुभव से परीक्षा करके निश्चय करना चाहिए।** अब अपने यहाँ तो बाह्य से कुछ नहीं लेना। वह तो एक जानने की बात है। क्या (कहते हैं) ?

मुख्य चिह्न तो.. मुख्य चिह्न तो यह है कि **उपाधिरहित शुद्ध ज्ञान चेतनास्वरूप आत्मा की अनुभूति है।** लो, सूक्ष्म बात है, भाई! इसने कभी धर्म का स्वरूप क्या, उसे अनुभव नहीं किया, माना नहीं। ऐसा का ऐसा बाहर में रखड़पट्टी कर-करके मानों बाहर से धर्म होगा, ऐसा अनादि से माना है। समझ में आया ? यह यात्रा करना, भक्ति करना, पूजा करना, नाम स्मरण करना, वह सब शुभराग और पुण्य है। शान्तिभाई! उस पुण्य से रहित अन्दर पवित्रता का पिण्ड आत्मा है। उसमें अन्दर में ज्ञान में, अनुभव में उसकी प्रतीति

होना। कहते हैं कि प्रतीति और अनुभूति पर्याय, दो गुण की पर्याय भिन्न है; इसलिए प्रतीति का अनुभूति, वह बाह्य लक्षण कहने में आता है। अरे...! राग नहीं, शरीर आदि बाह्य निमित्त भी नहीं। पण्डितजी! आहाहा!

मुमुक्षु : आज व्यवहार का दिन आया अवश्य।

पूज्य गुरुदेवश्री : व्यवहार अर्थात्? व्यवहार की व्याख्या क्या? एक पर्याय द्वारा दूसरी पर्याय को जानना, इसका नाम व्यवहार है। यहाँ इतनी बात है। ऐ... वजुभाई! व्यवहार का समय आया अवश्य, कहते हैं।

मुमुक्षु : व्यवहार का दिन आया।

पूज्य गुरुदेवश्री : समय कहो या दिन कहो। भगवान! जानने के लिये।

वस्तु पूरी है, उसकी प्रतीति-सम्यग्दर्शन तो अतिसूक्ष्म परिणाम है और वह निर्विकल्प परिणाम है। वह स्वयं अपने को नहीं जानता, स्वयं पर को नहीं जानता; इसलिए यहाँ छद्मस्थ को उस सम्यग्दर्शन पहिचानने का चिह्न अनुभूति (कहा है)। आनन्द का अनुभव होना, ज्ञान का वेदन-चेतना ज्ञान की अनुभूति होना, वह सम्यग्दर्शन का बाह्य चिह्न कहने में आता है। क्योंकि जहाँ-जहाँ अनुभूति होती है, वहाँ-वहाँ सम्यग्दर्शन होता है। और जहाँ-जहाँ सम्यग्दर्शन होता है, वहाँ-वहाँ अनुभूति होती ही है। धीरुभाई! बहुत (सूक्ष्म) परन्तु यह वीतराग का मार्ग पूरा ऐसा है कि लोगों ने सुना भी नहीं। ऐसा का ऐसा मानकर बैठ गये कि हम वीतरागमार्ग में हैं। बापू! वीतराग अर्थात्?

उसका सम्यग्दर्शन अर्थात् वह कोई अलौकिक चीज़ है। कहते हैं, अलौकिक! जहाँ सम्यक्त्व हुआ, अनन्त जन्म-मरण गये। चौरासी के अवतार में नरक और निगोद के भव करके भटकता है। ये सेठ और राजा वे सब दुःखी.. दुःखी.. दुःखी.. प्राणी हैं बेचारे। क्योंकि आत्मा के आनन्द का जहाँ स्वाद नहीं, वहाँ दुःख के स्वाद में भटक रहे हैं। जादवजीभाई! सत्य होगा यह? ये सब पैसेवाले दुःखी होंगे? ऐई... जयन्तीभाई!

मुमुक्षु : दुःखी तो....

पूज्य गुरुदेवश्री : कहाँ दुःखी? यहाँ तो शरीर मोटा स्थूल (होवे), लड्डू खाये, मौसम्बी का रस पीवे, जामुन खाये, क्या कहलाता है। गुलाबजामुन। घी में तले हुए लड्डू।

धूल भी नहीं, सुन न! यह तो खाने की इच्छा है, वही राग और दु:ख है। बाहर की चीज़ कहाँ... वह तो जड़ है, मिट्टी-धूल है। समझ में आया? यह कहाँ खा सकता है? उस चीज़ को देखकर राग करता है, उस राग को खाये-अनुभव करे। आकुलता में है। देवचन्दजी! दुनिया कहती है कि ओहो! इसे पैसा मिला, हाम, दाम, ठाम। खाये, पीये और मजा करे। धूल में भी मजा नहीं है, सुन न! मूर्ख! सब मूर्खाई में-अज्ञान में पड़े हैं।

यहाँ तो परमात्मा ऐसा कहते हैं कि आत्मा का सुख, वह आत्मा के अन्दर में है। उस अन्तर की दृष्टि करके जो आनन्द का वेदन होता है, उसमें ज्ञान का वेदन (होता है), उसके द्वारा प्रतीति है, उसे पहिचानना, इसका नाम बाह्य चिह्न से समकित को पहिचानना, ऐसा कहने में आता है। बहुत सूक्ष्म! आहाहा! समझ में आया?

वे चिह्न कौन से हैं सो लिखते हैं.. वह चिह्न किसे कहना? चिह्न कहो, लक्षण कहो। बाह्य। **मुख्य चिह्न तो..** मुख्य चिह्न यह है **उपाधिरहित शुद्ध ज्ञान चेतनास्वरूप आत्मा की अनुभूति है।** आहाहा! सम्यग्दर्शन का बाह्य मुख्य चिह्न यह है कि उपाधिरहित -राग जो कुछ शुभराग (होता है), वह भी उपाधि है। दया, दान, व्रत, तप का विकल्प - राग उठता है, वह उपाधि है। आहाहा! उस उपाधिरहित। भगवान आत्मा वीतरागस्वरूप आत्मा है, उस वीतरागस्वरूप की वीतरागी पर्याय की प्रतीति होना कि यह पूरा आत्मा वीतराग है, ऐसी पर्याय में प्रतीति होना, उसका लक्षण अनुभूति-अनुभव है। समझ में आया?

कैसा अनुभव? कि उपाधिरहित। आत्मा के अनुभव में उपाधि नहीं होती। उपाधि-राग हो, वह आत्मा का अनुभव नहीं है। शुद्ध ज्ञानचेतना। वह तो आत्मा के ज्ञानस्वरूप भगवान आत्मा, चैतन्य का पिण्ड प्रभु आत्मा का अनुभव, ज्ञान चेतना एकाग्र **आत्मा की अनुभूति है। यद्यपि यह अनुभूति ज्ञान का विशेष है,..** देखो! यह अनुभूति ज्ञान का प्रकार है, यह समकित का प्रकार नहीं है। **तथापि वह सम्यक्त्व होने पर होती है, इसलिए उसे बाह्य चिह्न कहते हैं।** देखो! आहाहा! आत्मा महाप्रभु वस्तु है, अनन्त गुण का पिण्ड सिद्धस्वरूपी है। जो सिद्ध भगवान हुए, वे तो पर्याय में-अवस्था में प्रगट हुए। वस्तु तो सिद्ध स्वरूप ही प्रत्येक का भगवान आत्मा है। ऐसा जो आत्मा, उसका अन्तर अनुभव होना। शुद्ध चेतना के परिणाम। ज्ञानचेतना के (परिणाम होना)। राग और राग का

फल, वह कर्म और कर्मफलचेतना की उपाधि से रहित है। ऐसा कहा न ? शुभ विकल्प उठता है, वह तो कर्मचेतना है, राग का अनुभव है और उसमें हर्ष का वेदन होता है, वह कर्मफल—राग का कार्य, उसका फल वेदन है दुःख का।

धर्म-सम्यग्दर्शन, धर्म का मूल, जैनदर्शन का जो मत है, वह तीन—दर्शन, ज्ञान, चारित्र का एकरूप है। उसका मूल सम्यग्दर्शन है। उसका बाह्य चिह्न अनुभूति के परिणाम हैं। कहो, वजुभाई! कितना याद रखना इसमें ? कहते हैं। घर के-संसार के व्यापार में सिर नहीं फोड़ते ? हजारों वस्तुओं का याद रखते हैं। मोहनभाई! धन्धा-व्यापार करे वहाँ, दो-पाँच दस लाख का धन्धा हो तो वहाँ कितना याद रखे। उसमें क्या ? यह तो अपनी चीज़ है। इसे कहाँ याद रखनी है ? यह तो है, ऐसा इसने जान लिया। समझ में आया ? आहाहा!

कहते हैं, समकित के बाह्य चिह्न, यद्यपि वह अनुभूति ज्ञान की पर्याय है, **तथापि वह सम्यक्त्व होने पर होती है,..** स्वरूप की प्राप्ति की प्रतीति, वह अनुभूति होती है तो समकित होता है। **इसलिए उसे बाह्य चिह्न कहते हैं।** इसलिए उसे बाह्य चिह्न कहा जाता है। चेतनजी! अरे! निज घर क्या है ? यह तो पर के घर में स्वामी होकर घूमा करता है। शरीर, वाणी और धूल-धमाका यह सब मिट्टी-धूल है, यह तो मिट्टी है, यह तो धूल है और पैसा, स्त्री, पुत्र सब परवस्तुएँ, पर है। उनका स्वामी होकर अनादि से घूमता है। जो इसका नहीं है, उसका स्वामी होकर घूमता है। ऐसा तो मूढ़ है, कहते हैं। रामजीभाई! सत्य होगा यह ?

मुमुक्षु : बराबर है, प्रभु! मूढ़ होकर ही घूमता है।

पूज्य गुरुदेवश्री : अपनी चीज़ अन्दर क्या है ? भगवान परमेश्वर त्रिलोकनाथ तीर्थंकरदेव ने आत्मा कहा, वह आत्मा क्या चीज़ है ? वह आत्मा शरीर नहीं, वाणी नहीं, कर्म नहीं। वह आत्मा पुण्य और पाप के विकल्प उठें, वह आत्मा नहीं। वह तो विकार है, आस्रवतत्त्व है। आहाहा! सूक्ष्म स्वरूप भगवान का सूक्ष्म समकित और उसका सूक्ष्म अनुभूति चिह्न। आहाहा! कहते हैं, **इसलिए उसे बाह्य चिह्न कहते हैं।**

ज्ञान तो अपना अपने को स्वसंवेदनरूप है;.. लो। **उसका रागादि विकाररहित शुद्धज्ञानमात्र का अपने को आस्वाद होता है..** क्या कहते हैं ? देखो! सरस बात है।

अनादि से राग और पुण्य-पाप के विकार, विभाव का वेदन है, वह अधर्म का वेदन है। ज्ञेय... यह पैसे मेरे और यह शरीर मेरा, मैं इनका और पुण्य-पाप के भाव हिंसा, झूठ, चोरी, विषयभोग, वासना के भाव दु:खरूप हैं। इनके अतिरिक्त दया, दान, व्रत, तप, और पूजा - भक्ति का विकल्प शुभराग है, वह दु:खरूप है। अरे! गजब बात है। उनका इसे वेदन है। अनादि का अज्ञानी को वेदन अनुभव में यह है। दु:ख का वेदन है, वह दु:खी है। राजा दु:खी, रंक दु:खी, करोड़पति सेठ कहलावे, अरबोंपति सब दु:ख की ज्वाला में सुलग गये हैं बेचारे। आहाहा! धीरुभाई!

मुमुक्षु : मोटर में बैठकर...

पूज्य गुरुदेवश्री : मोटर अर्थात्? वह तो जड़ है, धूल है। उस मोटर में बैठकर, देखो न, अभी नहीं हुआ? लाख रुपये की मोटर थी। पत्नी, पति दो। २५ वर्ष की पत्नी और २८ वर्ष का पति और लड़का तीनों मर गये। समाचार पत्र में आया था। लड़के को लाये थे... चारों व्यक्ति मर गये, लो... फोटो लाये थे। वह लड़का सवेरे दो-तीन दिन पहले (लाया था)। बड़ा अमलदार। इंजीनियर था। बड़ा वेतन है, लाख रुपये की मोटर। स्त्री २५ वर्ष की, २८ वर्ष का वह और एक लड़का - तीनों, और चौथा बैठा हुआ। तुम्हारी मोटर वहाँ जाती है, मुझे वहाँ आना है। चौथा दूसरा बैठा था। कोई। सब चारों मर गये। उनका लड़का छोटा था, डेढ़ वर्ष का। वह और उड़कर पड़ा तो ऐसे आगे, वह बच गया। यह दशा जड़ की है। यह मोटर, लो। उत्कृष्ट कहते थे, लाख रुपये की। ऐई! इंजीनियर! यह कोई कहता था कि मोटर बड़ी थी। समाचार पत्र में आया था। बड़ा वेतनदार होगा। पन्द्रह हजार का। उसमें धूल में भी कुछ नहीं है। लाख का वेतन हो या... आहाहा!

मुमुक्षु : यह तो मर गया उसका दृष्टान्त दिया। परन्तु अभी...

पूज्य गुरुदेवश्री : हजारों दु:खी दिखते हैं। बिना मरे, जीवित।

मुमुक्षु : हजारों लहर करते हैं, उसका कुछ नहीं, वह मर गया उसका दृष्टान्त...

पूज्य गुरुदेवश्री : जीवित कहते हैं न। यह कहाँ मर गये की (बात) है। यह तो दृष्टान्त दिया परन्तु जीवित सब दु:खी हैं। यह तो यहाँ कहते हैं, यहाँ क्या कहते हैं? देखो न।

ज्ञानमात्र का अपने को आस्वाद होता है.. इसके बिना अनादि का स्वाद किसका है, ऐसा कहा यहाँ तो। जब धर्म प्राप्त करे, धर्मी जब धर्म को प्राप्त करे, तब अन्दर में आनन्द का, ज्ञान के आनन्द का अन्तर का स्वाद आता है, क्योंकि आत्मा में अतीन्द्रिय आनन्द है। भगवान केवली को अनन्त ज्ञान, अनन्त दर्शन, अनन्त वीतरागता और अनन्त आनन्द प्रगट होता है। केवली को (प्रगट होता है), वह कहाँ से आता है? बाहर से कहीं से आता है? अन्तर में आनन्द प्रभु आत्मा नित्यानन्द भगवान है। खबर नहीं होती। यह तो रंक होकर-भिखारी होकर चौरासी के अवतार में फिरता है।

कहते हैं कि अनादि का इसे अपने ज्ञान का स्वाद नहीं है। अर्थात् धर्म नहीं है। इसे अनादि का राग और द्वेष, पुण्य और पाप, ये मेरे इसका इसे अज्ञान का-राग का स्वाद है। उस स्वाद से अज्ञानी मूढ़ होकर चार गति में घूमता है। कहो, वजुभाई! ये सब मोटरवाले सुखी नहीं होंगे? दो-दो करोड़, तीन-तीन करोड़ रुपयेवाले कहते हैं। अभी गये लगते हैं, बापू! ऐई! यह कहते हैं, इनका काका बैठा है। ...यह उसमें जरा चतुर कहलाये न! इनकी भी माने नहीं। कौन माने? अनुकूल होवे तो हाँ करे। नहीं तो काका विचार करूँगा। धूल में भी नहीं। वह तो पूर्व का कोई पुण्य का योग होवे तो पाँच-पचास लाख, करोड़-दो करोड़ का संयोग दिखता है। उसमें इसके पास कहाँ आये थे? जड़ तो जड़ में रहे थे। पैसा जड़ में रहा है या चैतन्य में आया है? है? आहाहा! कुछ भान ही नहीं होता। पैसा, मकान, इज्जत, वह तो जड़ में जड़रूप होकर रहे हैं या आत्मा के होकर रहे हैं? आत्मा के होकर रहे तो वह चीज़ अरूपी हो जाए। वह तो सब रूपी है। मोहनभाई!

यहाँ तो आत्मा के स्वाद की बात करते हुए उससे उल्टे की बात अभी पहले चलती है। उस अनुभूति में आत्मा का स्वाद आता है, उससे पहिचान करावे (कि) इस आत्मा को सम्यग्दर्शन हुआ। समझ में आया? अनादि का विभाव का दुःख तो वेदन करता है। वह जब ज्ञान है, वह अपने में अपने को स्वसंवेदनरूप है। ज्ञान, वह अपने को अपना स्व-संवेदन है। राग का, पुण्य का वेदन था, वह तो आकुलता का दुःखरूप था। उसमें तो मिथ्याश्रद्धा थी। मिथ्याश्रद्धा को पहिचानने का यह चिह्न है। दुःख का वेदन, सुख नहीं। और सम्यग्दर्शन का चिह्न आत्मा की अनुभूति में ज्ञान का-ज्ञान का जानना।

ज्ञानस्वरूप आत्मा है, उसे परिणाम में ज्ञान के वेदन में लाना। ज्ञान का स्वसंवेदन

(होना) । स्व अर्थात् स्वयं से सं-प्रत्यक्ष । राग और निमित्त और मन की अपेक्षा रखे बिना आत्मा, आत्मा के अन्तर सीधे ज्ञान को प्रत्यक्षरूप से वेदे, उसका नाम अनुभूति कहने में आता है । वह अनुभूति सम्यग्दर्शन का बाह्य चिह्न है । देवचन्दजी ! आहाहा ! यह तो बाहर की बड़ी धमाल करे और माने कि इसमें मुझे कुछ धर्म हुआ । धूल भी नहीं, सुन न ! एक क्षण का धर्म तो अनन्त जन्म-मरण के नाश का भनकार देता है । अल्प काल में अब हम छूटे । मुक्ति... मुक्ति... मुक्ति के भनकार बजते हैं । समझ में आया ? उसे सम्यग्दर्शन का धर्म कहने में आता है । आहाहा ! गजब बात, भाई !

यह ज्ञान है, वह अपने को अपने से स्वसंवेदनरूप है । ज्ञान, ज्ञान से वेदन में आये । आत्मा का ज्ञान आत्मा के सन्मुख होकर आत्मा से ज्ञात हो, आत्मा से वेदन में आये । जिसमें राग, व्यवहार विकल्प की भी अपेक्षा नहीं है । आहाहा ! समझ में आया ?

उसका रागादि विकाररहित शुद्धज्ञानमात्र का अपने को आस्वाद होता है कि – 'जो यह शुद्ध ज्ञान है सो मैं हूँ... देखो ! आहाहा ! यह ज्ञानस्वरूप चैतन्य आत्मा है, उसका चैतन्य का पर से विमुख होकर, स्व से सन्मुख होकर और ज्ञान का ज्ञान को (वेदन हो), स्वयं स्वयं से वेदन में आये, ऐसा जो ज्ञानभाव, वह मैं हूँ । वेदन में आया जानने का और आनन्द का, उससे (ख्याल आया कि) अरे ! यह मैं । यह आत्मा वह मैं । राग, पुण्य और विकल्प, वह मैं नहीं—ऐसा यहाँ नहीं कहा । यह मैं (ऐसा अस्ति से कहा है) । आहाहा ! कहो, समझ में आया ?

भगवान आत्मा वस्तु है न ? उसमें आया है, 'अमर भारती' में (आया है) । किसी ने उससे पूछा होगा कि तुम्हारी मुक्ति सरल बहुत, हों ! उससे पूछा क्योंकि मरुदेवी को हाथी के हौदे मुक्ति हुई । एलाची को नाचते हुए हुई । किसी साधु का आता है, शास्त्र में आता है । खिचड़ी खाते-खाते, चावल खाते-खाते केवलज्ञान हो गया । क्योंकि संवत्सरी का अपवास नहीं कर सकता था । फिर आहार ले आया । आहार लेकर आया और साधु उसमें थूका, वह खाते-खाते (केवलज्ञान हुआ ऐसा आता है) । अरे ! केवलज्ञान (हुआ), तब उसका जवाब ऐसा दिया कि यह तो अन्तर की बात है । उसे कुछ बाहर की जरूरत नहीं है । ठीक ! अभ्यन्तर की ऐसी बात है । ऐसा सब खिचड़ा...

मुमुक्षु : ..... अंगूठा रखा था ।

पूज्य गुरुदेवश्री : अंगूठा रखा था ? किसमें ? सब बातें। क्या हो ? मार्ग की खबर नहीं होती। वीतराग परमात्मा यह तो केवलज्ञानी, जिन्होंने एक समय में तीन काल-तीन लोक जाने हैं। जिन्हें सौ-सौ इन्द्र वन्दन करते हैं, गणधर जिनके शिष्य हैं ! आहाहा ! उनका कहा हुआ मार्ग, बापू ! कोई अपूर्व है। लोगों को सुनने मिलता नहीं और मान लेते हैं बाहर से। ठगा जाएँगे, जिन्दगी चली जाएगी। आहाहा ! भव चला जाएगा। अनन्त गये उनमें का यह होगा। यदि इसका यथार्थ ज्ञान नहीं करे कि यह वीतरागमार्ग कोई दूसरी चीज़ है। समझ में आया ?

कहते हैं, **रागादि विकाररहित शुद्धज्ञानमात्र का अपने को आस्वाद होता है कि – 'जो यह शुद्ध ज्ञान है सो मैं हूँ और ज्ञान में जो रागादि विकार हैं, वे कर्म के निमित्त से उत्पन्न होते हैं, वह मेरा स्वरूप नहीं है'..** लो। दो बातें की हैं। पहला यहाँ अस्ति से लिया। ज्ञानस्वरूप जाननहार का प्रवाह, चैतन्य प्रवाह अन्दर नित्य बहता है। उसका ज्ञान होने पर (भान हुआ) कि यह आत्मा। और पुण्य का विकल्प-शुभभाव उठे, वह निमित्त की उपाधि है। वह मेरा स्वरूप नहीं है। ऐसे राग और आत्मा के बीच भेदज्ञान होकर आत्मा का भान और स्वाद आना, उसे यहाँ अनुभूति और अनुभव कहा जाता है। वह अनुभूति सम्यग्दर्शन के साथ होती है। क्या हो ? अरे ! जगत। काल चला जाता है। देखो।

इस प्रकार भेदज्ञान से.. इस प्रकार भेदज्ञान करके। ज्ञान की बात लेनी है न ! बाह्य चिह्न। **ज्ञानमात्र के आस्वादन को ज्ञान की अनूभूति कहते हैं,..** जो राग विकल्प है, चाहे तो दया, दान, व्रत, भक्ति, पूजा हो परन्तु वह राग है, वह कर्म के निमित्त की उपाधि है; स्वभाव नहीं। वह स्वभाव नहीं, वह मेरी जाति में भरी हुई चीज़ नहीं। निमित्त की उपाधि से उत्पन्न हुआ भाव, वह भिन्न है और मेरे स्वभाव से वेदन का भाव हुआ, वह मेरा स्वभाव है। आहाहा ! समझ में आया ? ऐसा भेदज्ञान करके **ज्ञानमात्र के आस्वादन को ज्ञान की अनूभूति कहते हैं,..** इस जानने के स्वभाव का अनुभव (होना), उसे ज्ञान का अनुभव-आत्मा का अनुभव (कहते हैं)। **वही आत्मा की अनुभूति है तथा वही शुद्धनय का विषय है।** लो, आहाहा ! गजब बात !

बाहर के अशुभपरिणाम घटकर शुभ में आने का भी इसे समय नहीं है। यह तो शुभ

हो तो भी उपाधि है। समझ में आया? करना, ऐसा और इसमें लिखा है। पहले ऐसा का ऐसा शुद्ध नहीं हो सकता, इसलिए अशुभ को टालने का उपाय शुभ है और मन को शुभ संकल्प से रोकना, इसलिए अशुभ टलता है। कौन टले? परन्तु टले भी क्या? टले किस प्रकार? शुभ और अशुभ दोनों जहाँ पर हैं, उसमें अशुभ टले और शुभ रहे, यह वस्तु कहाँ है? समझ में आया?

यह भान आठ वर्ष की बालिका को भी होता है और मेंढ़क को होता है। भगवान के समवसरण में तो मेंढ़क भी सुनने जाते थे। भान न हो तो बड़े राजा और सेठिया को न हो। भान होवे तो मेंढ़क को होवे, ऐसा कहते हैं। आत्मा है न, वह कहाँ पर की अपेक्षा रखी है कि ऐसा साधन हो और इतना हो तो होगा। ऐसा है? जहाँ आत्मा हो, वहाँ होता है। आहाहा! समझ में आया? इसकी पद्धति की पद्धति तो पहले पकड़े कि पद्धति तो यह है। इस मार्ग के अतिरिक्त कोई दूसरा मार्ग नहीं है। आहाहा!

कहते हैं, भेदज्ञान करके। अन्तर में ज्ञानमात्र अर्थात् राग बिल्कुल नहीं, ऐसा ज्ञान चैतन्य का स्वभाव, उसकी अनुभूति (होवे) **वही आत्मा की अनुभूति है..** वह ज्ञान की अनुभूति, वही आत्मा की अनुभूति है, ऐसा। ज्ञान का अनुभव, वही आत्मा का अनुभव हुआ। दूसरी कुछ चीज़ नहीं। ज्ञानगुण से बात की है। समझ में आया? **तथा वही शुद्धनय का विषय है।** वह शुद्धनय का विषय द्रव्यस्वभाव, उसमें से अभेद परिणति हो, वह शुद्धनय का विषय कहने में आता है। समझ में आया? ऐसा धर्म वीतराग का। कहो, धीरुभाई! तुम्हारे पिता तब यात्रा करके मौके से आये थे और यहाँ कहा कि वह पुण्य है, धर्म नहीं। हाय.. हाय..! शोर मचा गये। (संवत्) २००१ का वर्ष। भाई! मार्ग ऐसा है, भाई! इसे मूल धर्म की खबर नहीं। मूल धर्म वीतराग है और वीतराग धर्म में राग की कोई अपेक्षा नहीं आती है। नहीं तो राग की अपेक्षा आवे तो वह वीतराग धर्म नहीं है। यह तो वीतराग धर्म है। आहाहा! समझ में आया?

ऐसी अनुभूति से शुद्धनय के द्वारा ऐसा भी श्रद्धान होता है.. देखो! इस ज्ञान के अनुभव के अनुभूति से शुद्धनय द्वारा... इस शुद्धनय द्वारा, ऐसा भी श्रद्धान होता है। **जो सर्व कर्मजनित रागादिकभाव से रहित..** सर्व कर्म, राग और कर्म का फल भावकर्म। कर्म जड़, उससे रहित; जड़कर्म के संयोग से प्राप्त चीज़ें – पैसा आदि, उनसे रहित और

संयोगी कर्म के लक्ष्य से हुआ विकार, पहला बीच में रहा कर्म, इस ओर आये रागादि तथा इस ओर बाहर फल आया, तीनों से रहित हूँ। आहाहा! समझ में आया?

सर्व कर्मजनित रागादिकभाव से रहित अनंत चतुष्टय मेरा स्वरूप है,.. लो, अरूपी है और रूप कहाँ से आया? वस्तु है या अवस्तु? वस्तु है। आत्मा पदार्थ है, तत्त्व है। यह जैसे जड़ है, वह वस्तु है। आया था न? अवस्तु आया था न? अरूपी है न, इसलिए लोगों को अवस्तु हो जाए। अरूपी है न। अरूपी भी पदार्थ है या नहीं? यह जड़ तो स्थूल है। समझ में आया? वह तो महासूक्ष्म। उसे भी जाननेवाला और उसे स्पर्श किये बिना (जाननेवाला), ऐसा वह चैतन्य पदार्थ जड़ को स्पर्श किये बिना जड़ को जाने, चैतन्य को स्पर्श कर चैतन्य को जाने। आहाहा! अड़कर, समझते हो? छूकर, स्पर्श कर। तुम्हारे क्या कहते हैं? छूकर।

भगवान आत्मा ज्ञान का स्वभाव, वह ज्ञान में रहकर ज्ञान को छूकर-स्पर्श कर जाने और ज्ञान, राग को और शरीर को स्पर्श किये बिना जाने, ऐसा वह तत्त्व महान चैतन्य पदार्थ है। वह मैं और रागादि भाव से भिन्न। **अनंत चतुष्टय मेरा स्वरूप है,..** ओहोहो! यह ज्ञान का वेदन आया, उसमें से जाना यह तो ज्ञान बेहद है, यह ज्ञानस्वभाव तो बेहद है। ऐसे दर्शन बेहद है, आनन्द बेहद है और वीर्य भी बेहद है। आहाहा! गजब भाई! ऐसे शरीर में छुपा हुआ, ढँक गया हुआ दिखता है। ढँका हुआ नहीं, वह तो खुला है। समझ में आया?

यह मैं, इस ज्ञान के अनुभव द्वारा जानने में आया कि रागादिरहित और ज्ञान की अनुभूति में ज्ञानसहित। यह ज्ञान प्रगट हुआ, वह पूरा ज्ञान, अनन्त ज्ञान, अनन्त आनन्द, अनन्त वीर्य और अनन्त दर्शन, वह मेरा रूप है। कहो, समझ में आया? रागादि, पुण्य, दया, दान तो नहीं परन्तु एक समय की पर्याय मेरा पूर्णरूप नहीं। समझ में आया? पर्याय में ऐसा भरोसा आया कि मैं तो अनन्त चतुष्टयरूप हूँ। समझ में आया? पर्याय अर्थात् अनुभूति के ज्ञान की पर्याय में ऐसा आया कि यह वस्तु पूरी अनन्त चैतन्य ज्ञान, दर्शन का रूप पूर्ण अनन्त चतुष्टयरूप है। आहाहा! गजब।

अन्य सब भाव संयोगजनित हैं.. धर्मी को सम्यग्दर्शन होने पर अनुभूति से ऐसा जानने में आता है कि श्रद्धा में मेरा आत्मा पूर्ण स्वरूप है और यह सब मुझसे पर है, ये संयोगजनित भाव हैं। शुभ-अशुभ, दया, दान, व्रत, भक्ति के विकल्प उठते हैं, वे भी

संयोगजनित हैं, स्वभाव से उत्पन्न नहीं हुए हैं। आहाहा! कर्मजनित रागादि, लो! है न? अन्य सब भाव संयोगजनित हैं। यह कर्म से उत्पन्न हुए, निमित्त से उत्पन्न हुए शरीर, वाणी, कर्म, धूल, स्त्री, पुत्र, सब कर्म के निमित्त से हुई संयोगी चीज़ है और अन्दर में राग और द्वेष, पुण्य-पाप के भाव, वे संयोग के निमित्त से हुआ संयोगी भाव है। समझ में आया? वे मेरे स्वरूप में हैं नहीं। गजब बात, भाई!

स्त्री, पुत्र, शरीर भिन्न है, यह जँचता नहीं, उससे कहते हैं कि राग मुझसे भिन्न। उस राग से भिन्न और अनन्त चतुष्टयरूप, ऐसा जो ज्ञान में जानकर प्रतीति होना, उसका नाम अनुभूतिसहित का सम्यग्दर्शन कहलाता है। आहाहा! इसके बिना इसे ज्ञान सच्चा नहीं होता, इसे चारित्र-फारित्र, व्रत नहीं होते। अंकरहित शून्य होते हैं। आहाहा! **अन्य सब भाव संयोगजनित हैं..**

ऐसी आत्मा की अनुभूति, सो सम्यक्त्व का मुख्य चिह्न है। लो, समझ में आया? यहाँ समकित का लक्षण-चिह्न वर्णन करना है न! इस आत्मा का जहाँ अन्तरज्ञान का जानना, अनुभव करना, वेदन करना-अनुभूति (होना), वह समकित का बाह्य मुख्य चिह्न है। पहले बाह्य लिया था। (अब कहा), मुख्य चिह्न तो यह है। ऊपर लिया था कि बाह्य चिह्न। बाह्य चिह्न में भी यह मुख्य चिह्न है, ऐसा। प्रशम, संवेग आदि बहुत लक्षण आयेंगे। परन्तु यह उसका मुख्य चिह्न है। आहाहा!

यह मिथ्यात्व अनन्तानुबंधी के अभाव से सम्यक्त्व होता है, उसका चिह्न है;.. ज्ञान की अनुभूति, यह समकित का बाह्य चिह्न अर्थात् मुख्य चिह्न और बाह्य चिह्न है। बाह्य अर्थात् दर्शन की पर्याय से दूसरी, इसलिए बाह्य और सब लक्षणों में अनुभूति, वह मुख्य चिह्न है, क्योंकि उस ज्ञान के वेदन से, 'आत्मा पूरा है' ऐसा जानने में आता है। लिखा है बहुत। ऐई! सेठी! यह तुम्हारे गाँव में से लिखा है। पण्डित जयचन्दजी ने लिखा है। यह सब अर्थ गृहस्थ ने किये हैं। आत्मा है न! वहाँ गृहस्थ कहाँ आत्मा था। गृहस्थपना, वह आत्मा कहाँ? और आत्मा वह गृहस्थपने में कहाँ है? आत्मा तो आत्मा में है। गृहस्थपने का भाव और गृहस्थपने से रहित आत्मा है। आहाहा!

यह मिथ्यात्व अनन्तानुबंधी के अभाव.. विपरीत श्रद्धा और अनन्तानुबन्धी की अस्थिरता का अभाव, समकित हो वहाँ कठिन हो। **सम्यक्त्व होता है, उसका चिह्न**

है;.. लो। उस समकित का यह चिह्न है। **उस चिह्न को ही सम्यक्त्व कहना, सो व्यवहार है।** देखो! यह व्यवहार लेना सर्वत्र। यहाँ से शुरु करके (सर्वत्र लेना)। आहाहा! चिह्न को समकित कहना, वह व्यवहार। अनुभूति को समकित कहना, वह व्यवहार। क्योंकि समकित दूसरी पर्याय है और अनुभूति दूसरी पर्याय है। उसका उसे कहना, वह निश्चय और दूसरे के द्वारा उसे पहिचानना, वह व्यवहार है। अनुभूति, अनुभूति से निश्चय, परन्तु अनुभूति से समकित को पहिचानना, वह व्यवहार है। आहाहा! समझ में आया? लो, अब ऐसा व्यवहार। वे कहे, हमें व्यवहार करना या नहीं? दवा-बवा रोज...

मुमुक्षु : .....

पूज्य गुरुदेवश्री : अनुभूति के साथ समकित होता है और समकित के साथ ही अनुभूति होती है, ऐसा कहते हैं। आगे-पीछे होते नहीं, इसलिए तो चिह्न कहते हैं।

मुमुक्षु : प्रतीति, श्रद्धा....

पूज्य गुरुदेवश्री : वह तो इस श्रद्धा का नाम है।

यहाँ तो चिह्न को समकित कहना, वह व्यवहार है। लो, ठीक! **उसकी परीक्षा सर्वज्ञ के आगम,..** ऊपर तीन बोल लिखे थे न? **आगम, अनुमान तथा स्वानुभव से परीक्षा करके निश्चय करना चाहिए।** ऊपर था। पहले पैराग्राफ में अन्तिम लाइन। उसमें अन्तिम था। फिर यह चिह्न कौन, ऐसा लिखा था।

अब कहते हैं, सर्वज्ञ के आगम। भगवान सर्वज्ञ परमेश्वर त्रिलोकनाथ तीर्थंकरदेव ने कहे हुए शास्त्र, उनके आगम से परीक्षा करके निर्णय करना। अनुमान करके निर्णय करना और स्वानुभव प्रत्यक्ष करके। ठीक। ज्ञान का वेदन प्रत्यक्ष होता है, उसके द्वारा प्रमाण करना। ऐसे प्रमाण से उसका निर्णय करना। ऐसे प्रमाण से परीक्षा करके निर्णय करना, ऐसा कहते हैं। कहो, समझ में आया? यह सब थोड़े समय में एकदम समझ में आये, ऐसा नहीं है, हों! जयन्तीभाई! यह बहुत समय निकाले, तब मुश्किल से पकड़ में आये, ऐसा है।

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : अरे! लड़के लेकर जानेवाले हैं। रहनेवाले कहाँ से? वह तो

टिकट मिला नहीं, इसलिए रहे हैं। वह कहता था, टिकट मिला नहीं। वह प्रसन्न हुआ। हमारे रहने का होगा। आहाहा!

इसी को निश्चय तत्त्वार्थश्रद्धान भी कहते हैं। देखो! अन्दर आत्मा के अनुभूति से हुई प्रतीति, ऐसे समकित को **निश्चय तत्त्वार्थश्रद्धान भी कहते हैं।** समझ में आया? और तत्त्वार्थश्रद्धान अलग तथा निश्चय समकित अलग, ऐसा नहीं है – ऐसा कहते हैं। तत्त्वार्थश्रद्धानं सम्यग्दर्शनं। कहते हैं, निश्चय भगवान आत्मा का पूर्ण रूप अनुभूति में आया और इससे प्रतीति को पहिचाना और उसे निश्चय समकित कहना तो उसे तत्त्वार्थश्रद्धान भी कहने में आता है।

वहाँ अपनी परीक्षा तो अपने स्वसंवेदन की प्रधानता से होती है.. लो, अपने को अपनी कैसे खबर पड़े? कहाँ अपने को स्वसंवेदन को मुख्य करके ज्ञात हो? ज्ञान के वेदन की अनुभूति से ज्ञात हो कि यह समकित है। समझ में आया? आहाहा! गजब। **और पर की परीक्षा तो पर के अंतरंग तथा पर के वचन व काय की क्रिया से होती है,..** पर भी उसके वचन, उसकी चेष्टा से ज्ञात हो कि ठीक, इसे यह दशा है। उससे उल्टा होवे तो उल्टी है, ऐसा भी ज्ञात होता है। आहाहा! कितना भरा है इस दूसरी गाथा में! लो! **यह व्यवहार है,..** लो, ठीक। पर के लिए जानना और अपना ज्ञान से जानना, यह सब व्यवहार है।

परमार्थ सर्वज्ञ जानते हैं। अत्यन्त सूक्ष्मता तो केवली जाने। पर्याय-पर्याय की विशेषता, वह तो केवलीगम्य है। **व्यवहारी जीव को सर्वज्ञ ने भी व्यवहार के ही शरण का उपदेश दिया है।** लो, यह एक गुण से दूसरे गुण को जानना, ऐसी व्यवहार की शरण भगवान ने भी कही है।

मुमुक्षु : आत्म?

पूज्य गुरुदेवश्री : परमात्मा सीधे ज्ञात नहीं होता। सम्यग्दर्शन की पर्याय प्रतीतिरूप बहुत सूक्ष्म अरूपी है। इसलिए ज्ञान का वेदन है, वह अनुभूति से ज्ञात होता है, इसलिए भगवान ने व्यवहार से जानने का कहा है, ऐसा शरण है; दूसरा कोई उपाय नहीं है। समझ में आया? उस ज्ञान की अनुभूति, वही व्यवहार। समकित का।

मुमुक्षु : ......

पूज्य गुरुदेवश्री : यह और अलग बात है। यह तो पर की अपेक्षा से पर का जानना कहना, वह व्यवहार, बस इतना। वह व्यवहार अर्थात् वास्तव में तो वह अभूतार्थ है। इसके अतिरिक्त भी दूसरा उपाय नहीं है। ज्ञान की पर्याय से यह है, इतना उसे लक्ष्य करना। बस, इतनी बात है। दूसरे का भी स्वरूप क्या है, आत्मा समकित दृष्टि ज्ञानी, उसे भी उसकी काया, वचन की प्रवृत्ति से जाने। समझ में आया?

मुमुक्षु : अनुभूति से....

पूज्य गुरुदेवश्री : ज्ञान से सीधे भी... प्रतीति को दो-तीन-चार बार कहा। सम्यग्दर्शन की पर्याय से ज्ञान की पर्याय अन्य है और एक से अन्य उससे जानना कहना, वह व्यवहार है। आहाहा!

मुमुक्षु : सीधे जानता है।

पूज्य गुरुदेवश्री : सीधे भी, सूक्ष्म है न। ज्ञान का जानने का स्व परप्रकाशक स्वभाव है। श्रद्धा का जानने का स्वभाव है? श्रद्धा तो एक अस्तित्वरूप है, बस इतना। ऐसा सिद्ध करना है। समझ में आया?

मुमुक्षु : तत्त्वार्थश्रद्धान वही....

पूज्य गुरुदेवश्री : वह तो सब एक ही है न! तत्त्वार्थश्रद्धान (या) निश्चयसम्यक्त्व, यह सब एक ही बात है। एक तो इन्होंने विस्तार किया है। अनुभूति से ज्ञात होता है और तत्त्वार्थश्रद्धान भी उसे कहने में आता है। निश्चय सम्यक्त्व को तत्त्वार्थश्रद्धान भी कहने में आता है।

मुमुक्षु : ....चार वर्ष लगातार....

पूज्य गुरुदेवश्री : यह नहीं। चार-चार घण्टे। परन्तु वह सब बात बाहर की। गप्प ही गप्प। वह प्रोफेसर है।

आहाहा! कितना सरस लिखा है! एक तो ऐसा कहा था कि प्रकृति का उपशम आदि सूक्ष्म है। पुद्गल के परिणाम हैं, इसलिए अति सूक्ष्म कहे। प्रतीति-सम्यग्दर्शन वह अति सूक्ष्म है, ऐसा कहा। ऐसा कहकर उसके बाह्य लक्षण (कहे, उसमें) मुख्य लक्षण

बाह्य में अनुभूति है। बाकी आगम से, अनुमान से, स्वसंवेदन से प्रमाण करना। उसमें यह मुख्य अनुभूति। जहाँ वेदन बदल गया, राग का वेदन आकुलतावाला था वहाँ शान्ति का वेदन हुआ। ऐसा ज्ञान द्वारा जाना और उस ज्ञान द्वारा यह समकित है, ऐसा जानना, वह व्यवहार है। समझ में आया?

मुमुक्षु : सम्यग्दर्शन में शान्ति का अनुभव आवे।

पूज्य गुरुदेवश्री : आनन्द की अनुभूति। आनन्दानुभूति। यहाँ तो ज्ञान की कही न! ज्ञान के साथ आनन्द सम्मिलित है। वहाँ अनन्त गुण की पर्याय का वेदन है। सब शुद्ध।

यहाँ तो इतना कहते हैं कि वह तो परमार्थ सर्वज्ञ जाने। वह तो क्या कि सूक्ष्म पर्याय अत्यन्त एक समय की है, वह तो केवलज्ञान जाने परन्तु इस प्रकार से छद्मस्थ को अनुभूति द्वारा सम्यग्दर्शन की प्रतीति का भान सत्यार्थ रीति से होता है अर्थात् सच्चा होता है, ऐसा। व्यवहार से हुआ, इसलिए खोटा है, ऐसा नहीं। समझ में आया? पर से हुआ, इसलिए खोटा है, ऐसा नहीं। वह तो पर से कहना है, इतना व्यवहार है। बाकी उससे ज्ञात हुआ है, वह तो बराबर ज्ञात हुआ है, ऐसा कहते हैं। व्यवहार, निश्चय को बतलाता है। आता है न? भाई! व्यवहार, निश्चय को बतलाता है, परन्तु निश्चय को बतलाता है, वह यथार्थ है। आहाहा! सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र को प्राप्त हो, वह आत्मा। भेद पाड़कर कहा, वह व्यवहार है। वास्तव में तो अभूतार्थ है। उससे जाना है, वह भूतार्थ है। समझ में आया? भारी सूक्ष्म बात ऐसी। ऐसा मार्ग है। अनन्त जन्म-मरण के चक्र मिटें और अनन्त-अनन्त आनन्द आवे, यह मार्ग ही कोई अलौकिक है। ओहो!

दु:खी होकर चौरासी में डोलता है। देव के भव, नारकी के भव, निगोद के भव, आलू-शक्करकन्द के भव। एक शरीर में अनन्त (जीव)। ऐसे भव। जब तक मिथ्यात्व है, तब तक उस मिथ्यात्व में ऐसे भव करने की ताकत नहीं है। मनुष्यपना नहीं रहे। मनुष्यपना तो पच्चीस-पचास-सौ वर्ष हो, जितना आयुष्य हो उतना। उड़ जाएगा, एकदम यहाँ से निकल जाएगा। समझ में आया? जन्म-मरण के दु:ख, हों! जिसे उनका नाश करना है, उसे इस आत्मा का सम्यग्दर्शन प्रगट करने से ही नाश हो ऐसा है। यह दूसरे किसी क्रियाकाण्ड से जन्म-मरण के दु:ख का नाश नहीं होता। आनन्दस्वरूप आत्मा,

आनन्दस्वरूप आत्मा के अनुभव से मिथ्यात्व का नाश होता है और उससे सम्यग्दर्शन का भान होता है। समझ में आया?

अनेक लोग कहते हैं कि – सम्यक्त्व तो केवलीगम्य है, इसलिए अपने को सम्यक्त्व होने का निश्चय नहीं होता, इसलिए अपने को सम्यग्दृष्टि नहीं मान सकते? परन्तु इसप्रकार सर्वथा एकान्त से कहना तो मिथ्यादृष्टि है;.. ऐसा होता नहीं। जानने में आता है। समझ में आया? अमुक द्वारा, ज्ञान द्वारा, अनुभूति द्वारा, स्वाद द्वारा ज्ञात होता है। **सर्वथा ऐसा कहने से व्यवहार का लोप होगा, सर्व मुनि-श्रावकों की प्रवृत्ति मिथ्यात्वरूप सिद्ध होगी..** तो सबकी श्रद्धा खोटी, मिथ्यात्ववाले सब प्रवृत्ति करते हैं ऐसा माना जाएगा। सच्चे मुनि, सच्चे धर्मात्मा, समकिती तो कोई रहे नहीं इस हिसाब से। समझ में आया?

सब अपने को मिथ्यादृष्टि मानेंगे तो व्यवहार कहाँ रहेगा? इसलिए परीक्षा होने के पश्चात् ऐसा श्रद्धान नहीं रखना चाहिए कि मैं मिथ्यादृष्टि ही हूँ। मिथ्यादृष्टि तो अन्यमती को कहते हैं.. यह स्थूल बात। **और उसी के समान स्वयं भी होगा,..**

मुमुक्षु : अन्यमती अर्थात्...

पूज्य गुरुदेवश्री : अन्यमती अर्थात् बिल्कुल ज्ञान ही नहीं और भान ही नहीं, ऐसा अन्यमती हो, ऐसा कहते हैं। भान होने के पश्चात् उसे अन्यमतपना रहता नहीं। उसे जैन का मत-अभिप्राय का भान हो जाता है। इसलिए इसे निर्णय करके सम्यग्दर्शन का ऐसा स्वरूप है, ऐसा इसे निर्णय करना चाहिए। विशेष कहेंगे, लो!

(**श्रोता :** प्रमाण वचन गुरुदेव!)